RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper

अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में मुसहर जाति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ बलवीर सेन

सह–आचार्य (समाजशास्त्र) राजकीय महाविद्यालय, मेड़ता सिटी, नागौर (राज0)

Abstract:
मुसहर जाति का मूल (उत्पत्ति) कहां है और विभिन्न युगों में इनकी क्या स्थिति रही है ? इस प्रश्न का कोई एक निश्चित उत्तर नहीं है। इस बारे में भिन्न–भिन्न मत हैं मुसहर अपने को 'भारत के मूल निवासी मानते हैं और अपनी स्थिति यहां के अन्य जातियों एंव प्रजातियों से किसी तरह कम नहीं मानते। इनके अनुसार त्रेता युग में भक्तों में श्रेष्ठ 'सबरी' हमारे वंशज हैं इन्होनें अपनी भक्ति के बल पर भगवान राम को अपने वश में किया तथा प्रेमानन्दित होकर रामचन्द्रजी ने सबरी के जूठे बेर को बारम्बार सराहना करते हुए खाये। भगवान राम के ये भक्त माने गये। राम ने स्वयं इन्हें विषेश महत्व प्रदान किया। सबरी घनघोर व एकांत जंगल में निवास करती थी और उसके पास अपनी जीविकोपार्जन के लिए कोई व्यवसाय नहीं था। अतः इसने जंगल के पत्तों को तोड़कर उसका पत्तल बनाना प्रारम्भ किया और अपनी आजीविका चलाने लगी। तब से मुसहरों का मुख्य व्यवसाय 'पत्ता बेचना' एंव पत्ते से बने पत्तल बनाना हो गया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मुसहर जाति आदिम वंश परम्परा से जुड़ी है तथा इनके व्यवयाय की उत्पत्ति एंव प्रसार का भी एक ऐतिहासिक कारण रहा है। भले ही आज मुसहर आधुनिक तकनीकि का स्वीकार न करने के कारण पत्तल उद्योग से विमुख होते जा रहे हैं किन्तु वर्तमान में पत्तल बनाने वाली जाति के रुप में इनकी पहचान बरकरार है।

Key words: जाति, मुसहर, अनुसूचित, भारत।

शोध विस्तार– मुसहर जाति का सम्बन्ध राजघराने से भी रहा है। ऐसा माना जाता है कि बिहार प्रान्त के दरभंगा में मुसहरों का शासन था। इनका यहां शासन मुस्लिमों के भारत में आगमन तथा राज्य की स्थापना के पूर्व तक था जब मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई तो इन्होने धोखे से मुसहर राज्य पर कब्जा कर लिया। इस आक्रमण से डरकर मुसहर जंगल में पलायन कर गये तथा जनजातिय जीवन जीने लगे। इसीलिए अनेक स्थानों पर इन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में भी जाना जाता है, जैसे उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर के अध्ययनों में मुसहर को अनुसूचित जनजाति के रूप में स्पष्ट किया गया है। मुस्लिमों द्वारा मुसहरों को जंगल में जाने के लिए बाध्य करने के पश्चात ये (मुसहर) 'कालीमाई' (जिन्हें मुसहर 'दुर्गा' और 'समे' रूप में पूजते हैं) और 'भगवान शिव की पूजा अर्चना में लग गये। इनके पूजन से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने इन्हें आशीर्वाद दिया कि "जाओ! अपनी बिरादरी में शादी करना। इसी बिरादरी में एक महान पुरुष पैदा होगा जो अपना खोया हुआ राज्य वापस ले लेगा ।" इसी वरदान के विश्वास को बनाये रखते हुए मुसहर जाति के सदस्य अपनी ही जाति में अपना विवाह करते हैं। जब लड़का लड़की अपने पसंद के जीवन साथी चुन लेते हैं तो दोनों अपनी बिरादरी के मुखिया के पास जाते हैं और मुखिया इनके विवाह को निश्चित कर देता है। लेकिन शर्त यह होती है कि शादी तभी पूरी तरह पक्की मानी जायेगी जब कि मूस (चूहा) की सब्जी और दवा दारू के दावत से मुखिया सन्तुष्ट न हो जाय। दवा दारू की व्यवस्था जंगली जड़ी बूटीयों से की जाती है। सांप काटने की दवा भी जड़ी–बूटी से ही की जाती है। इस तरह मूस' (चूहा) का भक्षण करने तथा दारू (शराब) का सेवन इनकी संस्कृति से जुड़ी वस्तुएं हैं। ऐसा भी माना जाता है कि मुसहर जाति कृषि भूमि में ये 'गोबर की खाद' कावँर से ढोकर डालते थे। जब फसल कट जाती थी तो खेत में गिरे अनाजों को ये चुनते थे तथा खेतों में रहने वाले चूहों को ये ढूँढकर शिकार करते रहे हैं और उसके मांस को खाते हैं। चूहों के शिकार करने में भी मुसहर जाति को पारंगतता' (कौशल) प्राप्त है ये किसी 'बिल' (जमीन में बने छेद या सुराग) को नाक से सूँघकर उसमें चूहे होने या न होने को बता सकते हैं चूहे के होने की स्थिति में ये उसके बिल या मांद में पानी भरकर अथवा धुआं करके चूहे को अपनी बिल या मांद से निकलने को विवश कर देते हैं तत्पश्चात् ये लोग चूहे का शिकार कर लेते है।[1]

विश्व प्रसिद्ध दूरदर्शन चैनल 'एनिमल प्लैनेट'[2] ने अपने अध्ययन में पाया कि मुसहर जाति को मिट्टी खोदने में महारत हासिल थी और इसीलिए इनका एक बड़ा भाग कृषि में लगा था। ये धान की खेती से जुड़े हुए हैं और धान की खेती सबसे अधिक श्रम साध्य है। ऐसी मान्यता है कि धान की खेती का प्रारम्भ मुसहरों ने ही प्रारम्भ किया। इस आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धान उपजाने वाले क्षेत्र (आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्र) से इनका गहरा रिश्ता है। आद्र जलवायु गंगा घाटी का क्षेत्र है और इस जलवायु के थपेड़ों को मुसहर प्राचीनकाल से झेलते आये है और गरीबी, अशिक्षा तथा पिछड़ेपन को शताब्दियों से अंगीकृत किये हुए आज तक गंगा घाटी के मैदानी इलाकों में रह रहे हैं। इस संदर्भ में बिहार प्रांत के 'मुसहर सेवा संघ' की टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि "हम गंगा घाटी की सबसे पुरानी जाति हैं और गंगा घाटी में आर्यों के प्रसार के बाद हम उसके गुलाम बना लिए गए। इतिहास का यह दुर्भाग्य हमारा अभी तक पीछा नहीं छोड़ा हैं।" इस तरह ये पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि हमारी जाति की मूल वैधता अनार्यों के साथ

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved

जुड़ी हुई है। मुसहरों में प्रचलित दारूपीना और सूअर के मांस का सेवन इनकी संस्कृति का अभिन्न अंग है। मुसहर जाति अपने देवता 'समे' को प्रसन्न करने के लिए दारु और सुअर की बलि चढ़ाते हैं इनके प्रत्येक उत्सव का ये खाने पीने के अभिन्न भोज्य पदार्थ है। यदि इन भोज्य पदार्थों के प्रचलन उत्पत्ति को ढूंढे तो ज्ञात होता है कि, मुसहर जाति ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था के सबसे निचले स्तर पर अवस्थित है और इन्हें अछूत घोषित कर सभ्य समाज के समान सम्पत्ति के अर्जन पर रोक लगा दिया गया । अतः इन्होंने छुआल पशु सुअर' को अपनी निजी सम्पत्ति बनाया। इनका सुअर से किसी तरह का अलगाव नहीं है। सुअर का बाड़ा इनके आवास के सटे होता है और जिन बर्तनों में ये भोजन करते हैं, उसी में उन्हें भी भोजन दे देते है इस तरह सुअर इनकी निजी सम्पत्ति का जरिया है और खाद्य सामग्री है तो देवी देवताओं को प्रसन्न करने के साधन भी है। स्पष्ट है कि सुअर और दारू इनके लोक संस्कृति के अभिन्न अंग है।[3]

मुसहर जाति के 'वंश वृक्ष' (जिसे ये 'कुरी' कहते हैं) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'भर', "राजभर व 'मुसहर' आदि सम्मिलित हैं। इन सबमें श्रेष्ठ 'मुसहर' हैं। इसके सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि ये अपना गोत्र सबरी से जोड़ते हैं और यह बताते है कि सबरी दो बहने थीं। सबरी बड़ी थी और इसी से मुसहरों की उत्पत्ति हुई और सबरी के छोटी बहन से उक्त अन्यों की उत्पत्ति हुई। इसलिए इन सबसे मुसहर बड़े हैं।

भर, राजभर, मुसहरों के गुण व कर्म भी अलग अलग रहे हैं और इसीलिये इनका व्यवसाय भी एक नहीं रहे है। 'भर' सुअर पालन के व्यवसाय से राजभर मिस्त्री (कारीगर) के व्यवसाय, और मुसहर 'पत्तल बनाने' के व्यवसाय को परम्परागत रुप से करते आये हैं। समय के प्रवाह में मुसहर जाति अन्यों से पिछड़ गये तथा बिहार, उ० प्र०. उड़ीसा और बंगाल में छिन्न–भिन्न जीवन जी रहे हैं। आज मुसहर अनुसूचित जाति के तहत् अछूत जीवन का गुजारा कर रहा है तथा इनकी प्रास्थिति अनुसूचित जातियों में भी निम्नतम् स्तर पर है।[4]

भारत की आत्मा गांवों में बसती है, क्योंकि यही भारत की 75 प्रतिशत के करीब लोग रहते है और आज भी यहां भारतीय सामाजिक संगठन का प्राचीनतम् मौलिक संस्कृति का प्रत्यक्ष दर्शन किया जा सकता है। चार्ल्स मेटकाफ का विचार है कि, "भारत के ग्रामीण समुदाय छोटे–छोटे गणतंत्र हैं, इसके पास वह सभी कुछ है, जिसकी उन्हें चाहत है। जब सारी वस्तुएं परिवर्तनाकांक्षी और चलायमान हैं तब भी येें गांव में टिके हुए हैं। शासकों के वंश और सत्ताएं गिरती जाती हैं, एक सत्ता के बाद दूसरी सत्ता आती–जाती रहती है परन्तु ये अडिंग हैं। भारतीय जन को जिन्दा रखने में इनका सबसे बड़ा योगदान है।" भारतीय समाज की 'मेरूदण्ड' कही जाने वाली अनोखी 'जाति–व्यवस्था का स्पष्ट स्वरूप गांव में ही दृष्टिगत होता है, यद्यपि जाति–व्यवस्था का दर्शन ग्रामीण, नगर कस्बों और यहां तक कि भारत में निवास करने वाले सभी धर्म व संप्रदायों (मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख आदि) तक में दृष्टिगत होता है। इसीलिए डॉ. सक्सेना का कथन है कि भारत के हवा में भी जाति विद्यमान है। भारतीय जाति प्रथा ने भारतीय समाज के संपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनैतिक ढांचे को आमूल–चूल रुप से प्रभावित करते हुए इन्हें संचालित, अनुशासित और नियन्त्रित किया है। डॉ. ए.आर.देसाई के शब्दों में, जाति–विभिन्नताएं यहां तक कि घरेलू और सामाजिक जीवन के तरीकों में विभिन्नताओं को निश्चित करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के निवास और सांस्कृतिक प्रतिमानों को भी निश्चित करती है। भू–स्वामित्व भी जाति पर आधारित है। अनेक कारणवश समाज–व्यवस्था के कार्यों को भी जाति के अनुसार बांटा गया है। इसने विभिन्न समूहों के मनोविज्ञान, सामाजिक दूरी के निम्न एवं उच्च संबंधों की इतने सूक्ष्म वर्गीकृत स्तरों को विकसित किया है कि संपूर्ण सामाजिक आकार–प्रकार शुण्डाकार सतंभ के समान दिखता है जिसका शिखर ब्राह्मणों और आधार असंख्या अछूत और दलितों द्वारा निर्मित है।[5]

"अस्पृश्यता' ने मानव को मानव से अलग–थलग करके छूआ–छूत, ऊँच–नीच, पवित्रता–अपवित्रता तथा भेदभाव जैसे जहर को समाज में व्याप्त कर दिया है। इससे अस्पृश्य अनुसूचित जातियों को हेय और घृणित रूप प्रदान कर दिया है। इसी हेयता और घृणितता से इन जातियों के व्यवसाय को जोड़कर समाज में निम्न समझे जाने वाले कार्यों को इनसे जोड़ दिया गया तथा 'श्रम के महत्ता' को नकारते हुए इसे (श्रम) जाति–व्यवस्था से उच्च/निम्न स्तरों में बांट दिया गया। जाति प्रथा ने समाज को टुकड़ों में बांटकर "सामाजिक विघटन का हेतुक बन गया है। अस्पृश्य अनुसूचित जातियों को कभी भी सवर्ण सामाजिक, आर्थिक (व्यावसायिक), सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि स्तरों पर इन्हें स्वीकार नहीं किया और नहीं इन्हें ऊपर उठने के संसाधनों अवसरों का उपभोग करने दिया। फलस्वरूप अस्पृश्य जातियों में रावण के प्रति तीव्र घृणा, विद्रोह प्रतिशोध एवं अलगाव की भावना स्थायी रूप से घर बना ली है। पं. जवाहर लाल नेहरू इस संदर्भ में कहते हैं कि भारतवर्ष में जाति–पाति प्राचीन काल में चाहे जितनी भी उपयोगी और महत्वपूर्ण क्यों न रही हो, पर वर्तमान में सब प्रकार की उन्नति के मार्ग में बड़ी बांधा और रुकावट बन रही हैं। आज वह हमारे सौहार्द की पात्र नहीं और किसी भी भावना के अधीन हमें उसके प्रति मोहग्रस्त नहीं होना चाहिए इसे जड़ से उखाड़कर ही हमें अपनी सामाजिक संरचना दूसरे ढंग से विकसित करनी होगी।"[6]

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)

अस्पृश्यता स्पर्शता की धारणा से जातीय तनाव का उदय हुआ है। डॉ. ए.आर. देसाई के विचार में, "ब्राह्मण जाति ने हिन्दुओं पर शताब्दियों तक विचारधारा– संबंधों और सामाजिक एक तंत्र चलाया है। प्रकृति को विलक्षण शक्तियों से भी अधिक ब्राह्मण ही केवल वे व्यक्ति थे, जिनके लिए यह समझा जाने लगा था कि वे ही उन शक्तियों को कर्मकाण्ड द्वारा दमन करने की जादुई शक्ति रखते हैं। सदियों के ऊंच–नीच व पवित्रता–अपवित्रता की धारणा ने शूद्रों (अनुसूचित जातियों) का इतना घोर शोषण, उत्पीड़न व दमन किया कि आपसी जातीय सौहार्द का स्थान जातीय तनाव ने ले लिया और जातीय संगठनों के माध्यम से वे एक–दूसरे से संघर्ष करने लगे। देश में जातीय उग्रवादियों नक्सलवादियों ने विभिन्नजातियों के मध्य घोर घृणा, संघर्ष व तनाव को जन्म दिया हैं। जातीय संघों को शोषित और दलित जातियों का शोषण, सुविधाभोगी अधिकार, स्वामी और बंधुआ की धारणा, आर्थिक निर्भरता, जातिय संघ संस्थाओं का गठन, जातिगत चुनावी समीकरण आदि के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है।[7]

भारतीय समाज में असमानता अति प्राचीन काल से विद्यमान रही है तथा ऐसी दशा में स्वतंत्रता व समानता पर आधारित लोकतंत्र की कल्पना बेमानी होगी। इसी परिप्रेक्ष्य में संविधान सभा में डॉ. अंबेडकर ने कहा था, "सामाजिक लोकतंत्र, समता और बंधुता को मान्यता देगा। इन त्रयी सिद्धांतों को अलग–अलग अवयव के रूप में मानना नहीं चाहिए। वे त्रयी के एक संघ का निर्माण करते है। यदि हम तथ्य को स्वीकार करें तो स्पष्ट है कि भारतीय समाज में इनमें से दो अवयव पूर्णतः अनुपस्थित हैं। इसमें से एक समता है। स्वतंत्रता के साथ हम किसी प्रकार के अन्याय और गलत कार्य के प्रति अंग्रेजों को दोषी ठहराने के बहाने का अवसर खो चुके हैं। अब हम अपने सिवा किसी अन्य को दोषी नहीं ठहरा सकेंगे। समय तेजी से बदल रहा है।"[8]

भारत में सामाजिक–आर्थिक असमानता की परंपरा का एक लम्बा इतिहास है । अत्यंत प्राचीन काल से भारत दुनिया का एक विख्यात असमान समाज रहा है। भारत का अतीत दृढ़ जाति–प्रथा की पाखंडपूर्ण पवित्रता से युक्त माना गया था। जाति और परिवार में कदाचित जन्म मात्र से ही व्यवसाय या वृत्तिनिश्चित कर दी जाती थी। वास्तव में यह इस तरह वर्णाश्रम धर्म के प्रचलन से बुद्धि लगन और विकल्प पर आधारित व्यक्ति की सामान्य गतिशीलता प्रति बाधित हुई। यद्यपि किन्हीं वृत्तियों और वयवसायों के बीच विद्यमान प्रत्येक स्तर में कुछ गतिशीलता के भी चिन्ह थे किन्तु वह एक प्रचलन और नियम की अपेक्षा अपवाद ही था। भारत की घोर असमानता का सबसे बुरा पक्ष यह है कि वह पारंपरिक रीति–रिवाजों और रूढ़ियों द्वारा स्वीकृत था अधम, निम्न और सीमांत वर्गों को कहा गया कि उनकी गरीबी, निम्न दिशा और दुःख ईश्वर आदेश से निश्चित उनके धर्म का एक हिस्सा है। उनका जन्म शूद्र जैसे निम्न जाति में हुआ है इसलिए वे जन्म के आधार पर निर्धारित व्यवसाय और कर्म का एक हिस्सा है। निम्न कार्य को करना ही उनके लिए अपने सामाजिक और नैतिक कर्तव्य तथा धर्म है। मानव इतिहास में पारंपरिक

रीति–रिवाज, रूढ़िवादिता, सामाजिक संबंधों के कानून और यहां तक कि सामाजिक नीतिशास्त्र से असमानता को इतना न्यायसंगत कभी नहीं बनाया गया था जितना कि शताब्दियों से भारत में बनाया गया। भारतीय परंपरा का यह हिस्सा समाज में दासता और गुलामी का प्रमुख कारण था। इससे हमारा समाज दासता की जंजीर में जकड़ दिया गया। भारत के महापुरूषों–महात्मा बुद्ध और अशोक से लेकर भक्त संतो जैसे कबीर चैतन्य धार्मिक विचारधारा के पथ–प्रदर्शक जैसे समाज सुधारकों और गांधी तथा अंबेडकर सरीखे राजनीतिज्ञों ने इस परंपरा के विरूद्ध विद्रोह किया और इस दशा को बदलने का प्रयास किया।' अनुसूचित जातियों पर लादी गई निर्योग्यताओं को समाप्त करने हेतु स्वतंत्रता के समय मद्रास रिमूवल ऑफ सिविल डिसएबिलिटीज एक्ट 1938, दी बांम्बे हरिजन (रिमूवल ऑफ सिविल डिसएबिलिटीज) एक्ट 1948, दी बांम्बे हरिजन रिमूवल एक्ट, 1947 दी रिमुवल ऑफ सिविल डिसएबिलिटीज एक्ट, 1943 (मैसूर), दी यूनाइटेड प्राविनसेज रिमूवल ऑफ सिविल डिसएबिलिटीज एक्ट, 1945, बिहारसीलन (रिमूवल ऑफ सिविल डिसएबिलिटीज एक्ट 1946', 'इत्यादि विधान पारित हुए थे। किन्तु ये विधान अंग्रेजो द्वारा अपने स्वार्थ में पारित थे और इन्हें उथल–पुथल में राज्य का पूर्ण संरक्षण भी नहीं प्राप्त हुआ।

निष्कर्ष– अनुसूचित जातियों का उत्थान भारत में सामाजिक न्याय पर आधारित समतावादी प्रजातांत्रिक व्यवस्था के लिए ही आवश्यक नहीं अपितु यह देश की राजनैतिक व्यवस्था के स्थिरता निरन्तता के लिए भी अतिआवश्यक है क्योंकि अनुसूचित जातियों की जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण अंश है। इसलिए इनका उत्थान देश की सामाजिक, आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। इस संदर्भ में सबसे प्रमुख बात यह है कि इनकी अत्यधिक जनसंख्या लगभग गांवों में रहती हैं, इसलिए समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समाज में इनकी बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक दशाओं का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन किया जाना जरूरी है।

संदर्भ सूची–

1. कादम्बिनी, मार्च 2001, पृ. 106
2. पाण्डेय, पुष्पलता (1961) : ''जनजातीय समस्याएं एवं बेरोजगारी'' जनजाति विशेषांक, निदेशक, हरिजन एवं समाज कल्याण मंत्रालय, उ.प्र., पृ. 96
3. कुमार संजय : ''मध्य वर्ग और मुसहर जाति'', हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र लखनऊ, नवम्बर 6, 2000 ई.

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)

4. जे. एडवर्ड, जे. (1961) : ''रिविटलाइजेशन मूवमेंट इन ट्राइबल इण्डिया'' इन आस्पेक्टस आफ रेलिजन इन इण्डियन सोसायटी, एडिअड बाई विद्यार्थी, एल.पी. केदार नाथ रामनाथ एण्ड संस, मेरठ पृ० 121
5. कादम्बिनी, मार्च 2001, पृ. 11
6. श्री निवास, एम.एन. (1966) : सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया, लास एंजिल्स, कैलिफोर्निया, पृ0 13
7. विद्यार्थी, एल.पी. (1970) : सोसियो कल्चरल इम्प्लिकेशन आफ इण्डस्ट्रियलाइजेशन ए केस स्टडी आफ ट्राइबल रिसर्व, काउन्सिल आफ कल्चरल एण्ड सोशल रिसर्च, राँची, बिहार खान, रशीद्उद्दीन, भारत में लोकतंत्र, एन.सी.ई.आर.टी. 1990, पृ. 99

2014, RHIMRJ, All Rights Reserved
ISSN: 2349-7637 (Online)